पं. जगन्नाथ बुवा पुरोहित
(गुनिदास)
व्यक्तित्व एवं कृतित्व
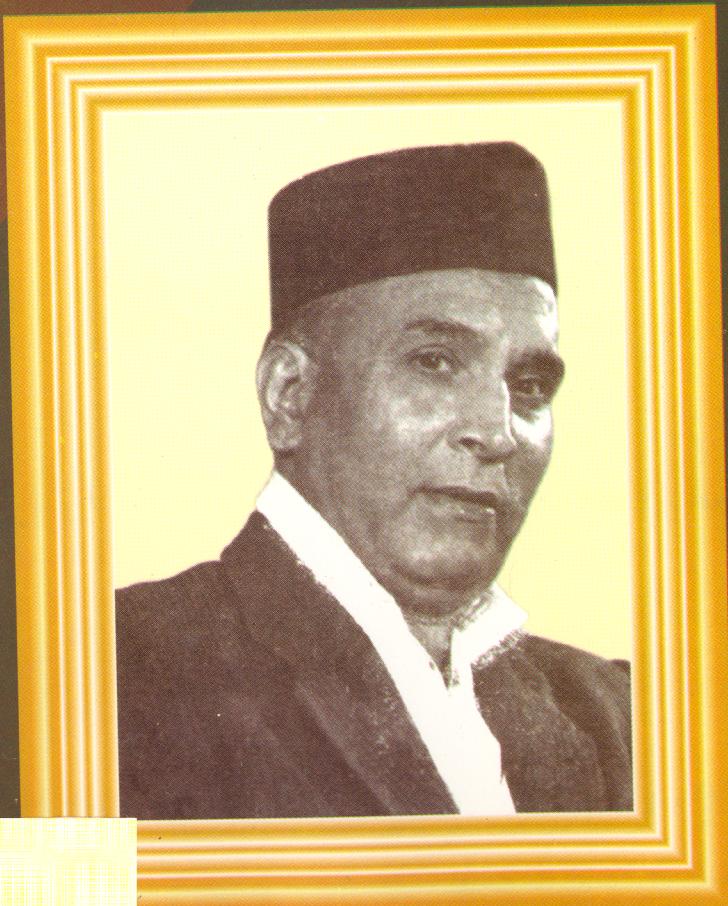
मंजुश्री त्यागी

प्रथम अध्याय

जीवनवृत्त

भारत की शस्य-श्यामला और पवित्र भूमि पर समय-समय पर गुणवान मनुष्य जन्म लेते रहें हैं। अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण जाज्वल्यमान भारत वसुन्धरा का आँचल कितना पवित्र, कितना अनोखा और कितना सौभाग्यशाली है, यह किसी से छिपा नहीं है। इस जगत् जननी धरती माँ ने न जाने कितने असंख्य कलाकार और संगीतज्ञों को इस धरती पर अवतरित किया, जिनका नाम संगीत-जगत् के संसार में सार्थक सिद्ध हुआ है। ऐसे असाधारण कलाकार संगीत की दुनिया में अपनी एक अमिट छाप छोड़ जाते हैं, और सदैव ही संसार ऐसे महान् कलाकारों के गुण गाता है और सदैव ही गाता रहेगा। उन दिव्य रत्नों को कभी कोई भुला नहीं सकता, तथा इन दिव्यरत्नों को शिखर तक पहुँचाने में घरानों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

परम्पराओं का पालन करने व नई सौन्दर्य-दृष्टि अपनाने से ही कला की नींव सुदृढ़ होती है, व विकास-क्रम सहज रूप से बना रहता है, इस कहावत पर विश्वास करके यह कहा जा सकता है कि घरानों के रूप में ही परम्परा को प्रधानता देते हुए प्राचीन संगीत का स्वरूप तथा विशिष्ट लक्षण कुछ सीमा तक सुरक्षित रह सके, तथा शास्त्रीय संगीत की धारा अनवरत रूप से चलती रहे। हिन्दुस्तानी संगीत को जीवित रखने का श्रेय उन परम्पराओं को ही प्राप्त है, जो वर्षों से गुरु-शिष्य की परम्परा के रूप से चली आ रही है। यद्यपि प्राचीन संगीत को अब तक जीवित रखने के प्रयत्न करने पर भी उसमें पर्याप्त परिवर्तन आ चुके हैं, तथापि आंशिक रूप से आधार स्वरूप उस गायकी को जीवित रखा जा सकता है। इसका श्रेय निश्चित रूप से उन संगीतज्ञों को प्राप्त है, जिन्होंने अपनी मेहनत, लगन तथा परिश्रम से अपने गुरुजनों की सेवा करके संगीत विद्या को प्राप्त किया तथा अपने शिष्यों को सिखाकर संगीत के प्राचीन रूप को, कला को, सामान्य सिद्धान्तों एवम् प्राचीन बन्दिशों को जीवित रखने का प्रयास किया। संगीत तो एक ऐसी कला है, जिसका क्रियात्मक रूप बिना 'जीवित-कला' के जीवित रह ही नहीं सकता। इस गुरु-शिष्य परम्परा के

माध्यम से ही प्राचीन संगीत की झलक हम तक पहुँची, अतः कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानी संगीत के उच्चता प्राप्त करने, विकसित हो सकने अथवा समृद्ध बनने में घरानों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

अतः हिन्दुस्तानी संगीत घरानों में एक नाम आता है—आगरा घराना। आगरा—एक ऐसी जगह, जहाँ पर बहुत से शायर, साहित्यकार, काफी नवाब-बादशाह, गायक एवम् वादक इत्यादि हुए हैं।

कोल्हापुर के जगन्नाथ बुवा पुरोहित भी आगरा घराने के गवैए थे। उनका जन्म हैदराबाद में एक गरीब ब्राह्मण परिवार में हुआ था, उनके पिता का नाम जनार्दन पुरोहित था। बचपन में ही उनके माताजी का स्वर्गवास हो गया था एवं जब उनके पिताजी का देहान्त हुआ था तब वे सिर्फ ग्यारह वर्ष के थे। उनके चाचा ने ही उनका पालन-पोषण किया था। लेकिन उनका बचपन गरीबी में ही बीता। बचपन से लेकर किशोरावस्था तक वे हैदराबाद में ही रहे, उनकी प्राथमिक शिक्षा मराठी में हुई थी। एवं तीसरी कक्षा के बाद वे कभी विद्यालय नहीं गए। लेकिन वह एक सुशिक्षित की तरह बातचीत करते थे। बुवा कहा करते थे कि दस्तखत करने के लायक उनकी पढ़ाई हो चुकी है। लेकिन स्कूल के अभ्यास में जो कभी गया नहीं, वही जगन्नाथ बचपन से ही गाने-बजाने के लिए पागल था। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को प्रतिष्ठित करने में लगाया। विवाह न करने से उनका अपना परिवार नहीं था।

बीसवीं शताब्दी के शुरूआत में दक्षिण हैदराबाद संगीत का एक बड़ा केन्द्र माना जाता था। उस काल में निजाम के दरबार में कुछ बड़े-बड़े कलाकार थे। संगीतमय वातावरण में जगन्नाथ के संगीतप्रेम का परिपोष (बढ़ावा) हुआ। उस किशोरावस्था में भी जगन्नाथ का स्वभाव ऐसा कि संगीत की किसी भी बात को अच्छा पाया, तो उसी के ही पीछे भागना, धन की याचना करने में चाहे कमी हो लेकिन विद्या जैसे धन की याचना करने में कोई कमी नहीं थी। बुवा ने अपना सम्पूर्ण जीवन संगीत की सेवा व अध्ययन में लगा दिया। इसका प्रारम्भ उन्होंने बचपन से ही किया था।

संगीत की प्राथमिक शिक्षा—सन् 1920 में हैदराबाद में जो बड़े-बड़े गायक थे, उनमें से मोहम्मद अली खाँ और शब्बू खाँ इनकी मेहरबानी जगन्नाथ ने प्राप्त की और संगीत की उपासना की। उस समय ख्याति प्राप्त वशीर खाँ कभी-कभी हैदराबाद आते थे। उनकी भी सेवा जगन्नाथ ने की और उनकी ओर से भी विद्या का प्रसाद प्राप्त किया। मोहम्मद अली खाँ दिल्ली के पास सिकन्दरा गाँव के थे। उसके बाद जगन्नाथ बुवा ने तानरस खाँ के भानजे शब्बू खाँ दिल्ली वाले से बहुत सी चीजें याद कीं। यह प्रशिक्षण दस वर्ष तक का था। इसके पश्चात् जगन्नाथ बुवा ने आगरा घराने के उस्ताद विलायत हुसैन खाँ से शिक्षा ली, जो खाँ साहब के जीवन पर्यन्त

जारी रहा। जीवनभर वो बहुत ही भाग्यशाली रहे कि उन्हें इतने महान गुरुओं का सान्निध्य प्राप्त हुआ। किसी गुरु से वे स्वर लगाने का ढंग, किसी से आलापचारी, किसी से बोल उपज इत्यादि की तालीम प्राप्त की थी। सभी उस्तादों से उनको भिन्न-भिन्न प्रकार की बंदिशें भी प्राप्त हुईं। उन्होंने सभी गुरुओं की खूब सेवा की एवम् गरीबी के बावजूद भी शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने अजमत हुसैन खाँ से भी कुछ चीजें याद की थीं।

सन् 1924 में बेलगाँव में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। कांग्रेस की बैठक में संगीत का कार्यक्रम भी होता था। संगीत के प्रति मोह होने के कारण जगन्नाथ कांग्रेस की बैठक में गए। पहली बार जगन्नाथ ने वहीं पर उस्ताद विलायत हुसैन खाँ साहब का गायन सुना। और पहली मुलाकात में ही विलायत हुसैन खाँ की गायकी का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। खाँ साहब का गायन सुनते ही बुवा को लगा कि इस गायकी में कुछ खास है। इस गायकी को प्राप्त करना चाहिए। खाँ साहब की गायकी से प्रभावित होकर, भरे हुए दिल से जगन्नाथ बेलगाँव से वापस गए।

सन् 1932 में मोहम्मद अली खाँ का देहान्त हो गया। उसके चार पाँच वर्षों के बाद शब्बू खाँ भी गुजर गए। मोहम्मद अली खाँ का देहावसान होने के पूर्व जगन्नाथ बुवा से एकदिन उन्होंने कहा–"तुम अब आगरे वाले विलायत हुसैन खाँ के पास जाकर, गाना सीखो। उनके पास तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।" अपने पहले गुरु का आशीर्वाद लेकर जगन्नाथ विलायत हुसैन खाँ के पास गए। खाँ साहब और जगन्नाथ में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध जुड़ गया। वह सम्बन्ध थोड़ा बहुत नहीं बल्कि पैंतीस सालों तक टिका रहा। और सिर्फ टिका ही नहीं बल्कि उन दोनों का आपसी सम्बन्ध कुछ ऐसा गहरा व मधुर रंग लाया कि उसकी कहानी एक सुन्दर काव्य रचना की तरह हो गई।

उस्ताद विलायत हुसैन खाँ एवम् जगन्नाथ बुवा का आपसी सम्बन्ध तथा संगीत की तालीम :–

उस्ताद विलायत हुसैन खाँ आगरा घराने के ऐसे प्रतिनिधि थे, जो प्राचीन वातावरण में रहने के बावजूद विद्यादान में बड़े सहृदयी थे। घरानेदार गायक की दो जाति होती है। एक ऐसा विचार करने वाले कि, अपने पास के विद्याधन को कंजूसी से सम्हालकर रखने वाले चाहें आपनी विद्या लुप्त हो जाएँ और दूसरी जाति ऐसे गायकों की, जो अपनी विद्या सही व्यक्ति को खुले दिल से, सच्चे मन से दान करना चाहिए, ऐसा विचार करने वाले। खाँ साहब दूसरी जाति के गायक थे। जो कोई भी उनके सम्पर्क में आए–चाहे वो गण्डाबन्ध शिष्य हो या उनकी साक्षात शिष्यत्व जिन्होंने ग्रहण नहीं किया हो, ऐसे संगीत प्रेमी–सभी का यही कहना था कि, विलायत खाँ साहब जैसे खुले दिल से विद्यादान करनेवाला दाता दूसरा कोई नहीं था। खाँ साहब कहा करते थे कि, विद्या ऐसा धन है कि देने से कभी कम नहीं होता उल्टा

बढ़ता ही चला जाता है। खाँ साहब के पास विद्वता की इतनी भारी सम्पत्ति थी कि मुक्त हाथों से खर्च करने पर भी उनके पास जाने कितने ही जवाहरात बचे होंगे। इस प्रकार का उदारवादी गुरु का साथ जगन्नाथ बुवा को भाग्य से प्राप्त हुआ था। और फिर इस गुरु की इतनी सेवा जगन्नाथ बुवा ने की कि, जिसका कोई वर्णन नहीं हो सकता। बुवा की भक्ति इस पराकाष्ठा पर थी कि, जिस तरह की गुरुओं की कहानियाँ हम रामायण, पुराण इत्यादि में पढ़ते हैं, उन्हीं गुरुओं की तरह यदि खाँ साहब ने कहा होता, ''जगन्नाथ, तू अपनी गर्दन काटकर मेरे सामने रख, '' तो जगन्नाथ बुवा क्षण भर का विलम्ब न करते हुए अपना सर कलम कर नज़राना उनके सामने रख देते।

खाँ साहब से तालीम लेने के दौरान भी बुवा और खाँ साहब का हमेशा के लिए एक साथ रहना नहीं होता था। जगन्नाथ बुवा को स्वयं के लिए स्वतन्त्रतः काम करना जरूरी था। उन्हें बहुत सी ट्यूशन मिलने लगी थी, अक्सर बुवा को कोल्हापुर, मुम्बई इत्यादि जगह आना जाना पड़ता था। फिर भी छः महीनों में कभीकभार मुम्बई में या अन्य कहीं गुरु-शिष्य की मुलाकात घटती थी और जब भी मुलाकात होती तो सीखने वाले ने और सिखाने वाले ने इस मध्यकाल के दूरी को भरना और उसका आनन्द उठा ही लेते थे।

एक दूसरे से दूर होने के दिनों में भी खाँ साहब के और जगन्नाथ बुवा के के बीच पत्रव्यवहार चलता रहता था। जगन्नाथ बुवा खाँ साहब को नियमित पत्र लिखा करते थे। एवम् पत्र के माध्यम से बहुत सी बातें करते थे।

यदि खाँ साहब कभी बुवा से मिलकर गये हों, तो उस मुलाकात से उन्हें कितना आनन्द मिला, इसका भी वर्णन वो पत्र में करते थे। फिर कब खाँ साहब से मिलना होगा, इसकी भी व्याकुल पूछताछ होती रहती थी।

शास्त्रीय संगीत जगत् में गुरु-शिष्य परम्परा में जगन्नाथ बुवा की गुरुभक्ति एक मिसाल थी। गुरु भी शिष्य के भक्ति की बहुत कद्र करते थे। जगन्नाथ बुवा स्वयं को दास ! सेवक ! नौकर मानते थे। उन्होंने शिष्य की संज्ञा भी अपने योग्यता के पार मानी थी। परन्तु बुवा के भावनात्मक भक्ति से गद्‌गद विलायत हुसैन खाँ साहब इतने मर्मज्ञ तथा सहृदयी थे कि, उन्होंने जगन्नाथ बुवा को शिष्य के ऊपर का स्थान दिया था। अपने प्रत्येक पत्र में वे बुवा को ''प्रियबन्धु'' कहकर सम्बोधित करते थे।

जगन्नाथ बुवा के गुरुभक्ति के कारण व्यक्तिगत रूप से उनका फायदा तो हुआ ही, खाँ साहब के पास से उनको संगीत विद्या का जो भण्डार मिला, उससे उनको और भी फायदा हुआ। जगन्नाथ बुवा एक अच्छे रचनाकार बने। उनकी गुरुभक्ति सिर्फ पत्रों में ही व्यक्त नहीं हुई बल्कि, वह नए-नए रचनाओं के रूप में आविष्कृत होने लगी। जगन्नाथ बुवा ने ''गुणीदास'' उपनाम से बहुत सी अच्छी-अच्छी बन्दिशें बनाकर अपने गुरु बिलायत हुसैन खाँ साहब को श्रद्धा सुमन के रूप में समर्पित

किया। उनकी गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर विलायत हुसैन खाँ साहब ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से शिष्य को आशीर्वाद प्रदान किया जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं।

एक बार की बात है, जगन्नाथ बुवा को पता चला कि, आगरे में विलायत हुसैन खाँ साहब बहुत बीमार हैं। काफी दिनों से अपने गुरु की कोई खबर ना मिलने पर बुवा बहुत चिन्तित थे। उन्होंने खाँ साहब की याद में एक बन्दिश की रचना की जिसमें उन्होंने ईश्वर से बहुत प्रार्थना की कि, वे जल्दी ही स्वस्थ हो जाएँ एवम् युग-युग जिये।

राग अहीरभैरव–एक ताल

स्थाई– तेरो जिया सुख पावे।
निसदिन मेरे गुणवन्ता।
अन्तरा– विनती प्रभु से दासगुणी की।
जुग-जुग जियो मेरो प्राण।।

राग अहीरभैरव के निम्नलिखित बन्दिश में गुणीदास जी ने खाँ साहब से प्रार्थना की कि,

राग अहीरभैरव

स्थाई– बेग बेग आवो मन्दिर
बहुत दिनन बीते।
अन्तरा– सूझत कछु नाहीं मोहे
निसदिन घड़ी पलछिन
''गुणीदास'' को दरस दीजे
ओ प्राणपिया।।

अब आगे इस बंदिश के माध्यम से गुणीदास को खाँ साहब का आशीर्वाद–

राग पटदीपक–एकताल–मध्यलय

स्थाई– साँचि गुरू की सेवा
करत वो ही पावे समाधान।
अन्तरा– प्रेम भक्त प्राण कहत
सुनोहो ''गुणीदास''
या दोऊ जग में प्रभु
तोहे देत बढ़ो नाम।।

अन्य एक घटना इस प्रकार है एक बार गुणीदास ने खाँ साहब की याद में आकाशवाणी मुम्बई से कुछ चीजें गाई। जिन्हें खाँ साहब ने भी अपने बीमारी की हालत में सुना था, खाँ साहब के बुलवाने पर जब गुणीदास उनसे मिलने गए तो, गुरु-शिष्य दोनों की ही आँखें भर आईं। दोनों ही स्तब्ध खड़े रह गए फिर अचानक खाँ साहब बोले, " बुवा, जो कुछ भी तुमने मेरे लिए किया, वो आज तक मेरे अपने बेटों ने भी नहीं किया।"

गुरु भक्ति का यह सिलसिला आगे तक जारी रहा, जगन्नाथ बुवा के शिष्यों ने भी सुन्दर-सुन्दर बन्दिशें बनाकर उनको समर्पित किया। उदाहरण के लिए उनके शिष्य सी. आर. व्यास जी की एक रचना प्रस्तुत की जा रही है।

राग मालव–द्रुत एकताल

स्थाई– तू ही रंगीला मेरा
करत जो हूँ रंग
गुणीदास तुमही सो पाया।

अन्तरा– गाने में रसप्राण को तुमही अपनाया।
सो दिया जगगुणी को वर्णित जाया।
अनमोल तिहारी माया।

गुरुभक्ति की इसी प्रकार की एक और बन्दिश सी. आर. व्यास जी द्वारा रचित :–

राग नटभैरव तीन ताल

स्थाई– सूरज चन्दा जब तक फिरे।
सबन तोरे नाम सुमिरन करे।।

अन्तरा– ऐसो गुणीदास तुम कियो।
अमर धुन सच सात सुरन में
सुनत सब लोग जगगुनी मन हरे।।

इसके जवाब में गुणीदास की बंदिश :–

राग जोग–रूपक ताल

स्थाई– मोरा लाडला नहीं गुनन मोपे
काहे करत मोसे नेहा।

अन्तरा– कहत गुणीदास सुनो हो गुणीजन*
जावो वहीं जहाँ विद्याधन पायो।

---

* "गुणीजन"–सी. आर. व्यासजी का उपनाम।

तेरो साँचो गुरु ''राजाराम''।।*

जगन्नाथ बुवा अपनी बन्दिशों के माध्यम से खाँ साहब से जैसे बातचीत करते थे—कभी खुशी से, कभी नाराज होकर। अपने बहुत सी बन्दिशों में उन्होंने खाँ साहब का गुण वर्णन किया। अपने शिष्य की यह गुरुभक्ति और प्रेम देखकर स्वयं खाँ साहब भी एक आध बन्दिशें बनाकर बुवा को प्रसाद के रूप में दिया। 'राग पटदीपक' में एक बड़ी सुन्दर बन्दिश खाँ साहेब ने बनाई ''साँची गुनन की सेवा करत वो ही'' और एक बड़े महफिल में इसे गाया।

पं. जगन्नाथ बुवा पुरोहित के गुरुओं के बारे में संक्षिप्त चर्चा

मुहम्मद अली खाँ

मुहम्मद अली खाँ मियाँ रमज़ान खाँ के भतीजे थे। यह भी उन्नीसवीं सदी में सिकन्दराबाद में पैदा हुए। संगीत की विद्या इन्होंने अपने बुजुर्गों से हासिल की। सुना है कि जब यह बाँदा पहुँचे तो वहाँ के नवाब जुलफ़िक़ार अली ख़ाँ ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया। वहीं हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध गवैये हाँडे इमामबख़्श भी मौजूद थे जो बड़ी पेजीदा और कठिन गायकी गाते थे। मुहम्मद अली ख़ाँ ने इनका गाना सुना तो वह गायकी इन्हें इतनी पसन्द आई कि उन्हीं के ढंग पर चलने का विचार किया और उनके शागिर्द हो गए। जयपुर, अलवर, बूँदी आदि रियासतों में इनकी बड़ी इज़्ज़त हुई ओर पुरस्कार आदि भी मिले। झालरापाटन के महाराजा इनसे बहुत प्रसन्न हुए थे और इन्हें अपने यहाँ नियुक्त कर लिया था तथा सवारी के लिए पालकी भी दी थी। ख़ाँ साहब मुद्दत तक वहीं रहे और सन् 1890 में उनका स्वर्गवास हुआ।

शब्बू खाँ

हैदर खाँ के पुत्र और तानरस खाँ के भतीजे शब्बू खाँ ने भी संगीत की तालीम पाई थी। इनकी तबियत बड़ी मुश्किल पसन्द थी और अपने खानदान की कुछ कठिन गायकी गानेवाले लोगों से भी इन्होंने शिक्षा ली थी। इनके गले से पेचीदा तानें और कठिन फंदे बड़ी आसानी के साथ निकलते थे। जिससे इनकी फितरत का अन्दाज अपने खानदान से निराला मालूम होता था। यह जीवनभर हैदराबाद में ही रहे और सन् 1939 के लगभग इनका देहान्त हुआ।

गुलाम मुहम्मद ख़ाँ

लाहौर के गुलाम मुहम्मद खाँ भी बहुत अच्छे गवैये हुए हैं। शुरू में यह सारंगी बजाते थे और अली बख़्श की शिष्या प्रसिद्ध गायिका सरदार बाई के यहाँ नौकर

---

* राजारामबुवा परादकर—इनसे भी सी. आर. ब्यासजी ने काफी साल सिखा था।

थे। तालीम के वक्त गुलाम मुहम्मद ख़ाँ सारंगी बजाया करते थे। यह सिलसिला कुछ रोज़ चलता रहा, पर जब सरदार बाई ने देखा कि उसकी तालीम के साथ यह सारंगीवाला भी सीख रहा है, तो उसने तालीम के समय इन्हें किसी न किसी काम से बाहर भेजना शुरू कर दिया। यह बात कुछ दिन तो इन्होंने सहन की पर एक दिन आख़िर कह ही बैठे, "बाई, तुम रोज़ तालीम के वक्त मुझे बाहर भेज देती हो। इसमें मेरा नुकसान होता है। कुछ मुझे भी हासिल करने दो।" इस पर सरदारबाई ने ताना दिया, "अगर ऐसा ही संगीत का शौक़ है तो सारंगी क्यों बजाता है, गाता क्यों नहीं।" यह सुनकर गुलाम मुहम्मद को बड़ी शर्म महसूस हुई और उसने उसी समय सारंगी उसके सामने ही ज़मीन पर दे मारी और कहा, "अब मैं तुम्हें गाकर ही दिखाऊँगा।" इतना कहकर वह अपने घर चल दिए। इतने दिन सुनने के कारण तालीम तो इनके मन में बसी ही हुई थी। बस मेहनत की ही कसर थी। इसके बाद यह तीन बरस तक घर से नहीं निकले और अपनी माँ के ज़ेवर बेच-बेचकर गुज़र करते रहे। इस बीच इन्होंने स्वयं भी जी तोड़ मेहनत की और अपने दोनों भाई रमजान ख़ाँ और अता मुहम्मद को भी मेहनत कराते रहे। उसके बाद दिल्ली वाले उमराव ख़ाँ के शिष्य होने के ख़याल से दिल्ली पहुँचे। इनकी लगन देखकर उमराव ख़ाँ ने इन्हें अपना शागिर्द बना लिया और लगभग छह महीने तक इन्हें सिखाया।

उस्ताद विलायत हुसैन खाँ

आगरा घराने के प्रसिद्ध कलाकार स्वर्गीय विलायत हुसैन खाँ एक ऐसे कलाकार के रूप में उभरे, जिन्होंने न केवल ललित कला का ऐसा विस्मयकारी व अद्भुत प्रदर्शन किया बल्कि अपने युग के पण्डितोचित गुणों से परिपूर्ण महान् विद्वान्, रचनाकार व संगीतज्ञ माने जाने लगे। उनकी कला की निपुणता व महानता उस विनीत, अहंकार रहित, अल्पदृष्टि वाले व्यक्ति की शख़्सियत के बिल्कुल विपरीत थी। स्वर्गीय उस्ताद विलायत हुसैन का अपने विषय पर श्रेष्ठ अधिकार था। महान् संगीतज्ञों के परिवार के वंशज विलायत हुसैन खाँ का जन्म सन् 1892 ई. में आगरा में हुआ था। आगरा घराने के वे वास्तविक, सच्चे व शुद्ध पथ-प्रदर्शक माने जाते हैं। गायन की शैली, यन्त्रकला एवं उनकी व्याख्या के विस्तार व उन्नति में घरानों की विशेष भूमिका रही है। खयाल गायकी में ग्वालियर, आगरा व दिल्ली घराने पथ-प्रदर्शक बने और हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, तानरस खाँ व घग्गे खुदाबख़्श जैसे महान् संगीत रत्नों को जन्म दिया।

वे उस्ताद निसार हुसैन खाँ, जिन्हें नत्थन खाँ के नाम से जाना जाता है, के चौथे सुपुत्र थे। संगीत की प्राथमिक शिक्षा का शुभारम्भ उस्ताद मोहम्मद बख़्श नौहार की देखरेख में हुआ। उसके बाद उस्ताद कल्लन खाँ, ज्येष्ठ भ्राता मोहम्मद खाँ व अब्दुल्ला खाँ, जयपुर के करामात खाँ से भी संगीत का प्रशिक्षण मिला। उस्ताद अब्दुल्ला

खाँ उच्च कोटि के रचनाकार थे जिनकी राग यमन में रचना 'ऐरी आलि पिया बिन' आज भी संगीत-प्रेमी गाते हैं। उस्ताद विलायत हुसैन खाँ की संगीत की प्राथमिक शिक्षा का शुभारम्भ सात वर्ष की आयु से हुआ और 18 वर्ष से लगातार परिश्रम और अथक प्रयास के उपरान्त उन्होंने अपना पहला सार्वजनिक प्रदर्शन किया। उस समय तक विलायत हुसैन खाँ अपनी काबलियत के कई नमूने पेश कर चुके थे। संगीत के सुनहरे इतिहास से जुड़े और परम्परा के अनुयायी उस्ताद फैयाज खाँ के साथ प्रारम्भ में गाया करते थे। दोनों का गायन आगरा शैली में निपुण व अलंकारित था। जुगलबन्दी के इतिहास में दोनों का गायन अपने आप में एक मिसाल था, जो अन्यत्र कभी न देखा गया था। कार्यक्रम का आगाज़ उस्ताद विलायत हुसैन खाँ के ध्रुपद या धमार से होता था जिसके बाद 'आफताब-ए-मौसिकी' फैयाज़ खाँ अपने संगीत के चमत्कार दिखाते थे। जब फैयाज़ खाँ तान लेते तो वही तान विलायत खाँ सरगम में लेते और यही संगीत की विचित्रता, सुन्दरता एवं अलौकिकता संगीतश्रोताओं को मन्त्रमुग्ध व आनन्दित कर देता था। संगीत के इतिहास में बहुत कम ऐसी महान् विभूतियाँ हैं जो ध्रुपद, धमार, ठुमरी व खयाल आसानी से गा सकते थे। ऐसे गायकों को चौमुखिया उस्ताद के विशेषण से संगीत की भाषा में सम्मानित किया जाता है। उन्होंने बहुत-से खयालों की रचना अपने उपनाम 'प्रानपिया' के नाम से की। उनका लय-ताल पर पूरा-पूरा अधिकार होने के साथ वे बहुत-से अप्रचलित तालों में भी गाते थे। उन्होंने बोल-तान और बोल-बाँट में विशिष्टीकरण किया था। पुराने अप्रचलित एवं लुप्त हुए राग, जिनकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था, उन्हें लोकप्रिय बनाने का श्रेय उन्हें ही जाता है। उन्हीं अप्रचलित रागों को उन्होंने अपने शिष्यों को भी सिखाया और इस प्रकार संगीत सीखने वाले लोगों के मध्य उन रागों को लोकप्रिय बनाया।

अपने उस्तादों के उदाहरण अपने समक्ष रखते हुए वे उनके मुकाबले का गाने के प्रयास में जुटे रहते। नट-बिहाग, आनन्दी, मलुहा-केदार, मलुहा-कल्याण, बहादुरी-तोड़ी कुछ ऐसे राग हैं जिन्हें उन्होंने लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। 'इलाहाबाद संगीत सम्मेलन' में सन् 1932 ई. में उन्हें 'संगीत-रत्नाकर' की उपाधि से सम्मानित किया। अपने जीवन के 40 वर्षों में पूरे भारत में विस्तृत देशाटन अर्थात् पर्यटन किया और बहुत-से स्थानों जैसे—मुम्बई, पूना, कोल्हापुर, हुबली, धाड़वाड़, बड़ौदा में थोड़े-थोड़े समय के लिए रहे। सन् 1935-39 ई. के बीच वे मैसूर राज्य के संगीतज्ञ के रूप में रहे और सन् 1940 ई. में कश्मीर के महाराजा ने उनसे अपने यहाँ अतिथि के रूप में पधारकर उनसे संगीत शिक्षा ग्रहण करने का निवेदन किया। उस समय विलायत हुसैन खाँ लगभग सभी संगीत-सम्मेलनों में हिस्सा लेने के लिए आमन्त्रित किए जाते थे। उनकी मौजूदगी के बिना कोई भी संगीत-सभा अधूरी ही दिखाई देती थी।

विलायत हुसैन खाँ अपने पीछे-जाने-माने अनेक शिष्यों को छोड़ गए हैं जिनकी

गिनती कर पाना कठिन है लेकिन फिर भी कुछ प्रमुख हैं जिनके नामों को हम यहाँ स्मरण कर सकते हैं। उनमें प्रमुख हैं—स्व. नन्हें खाँ (खाँ साहब के छोटे भाई जिनकी असामयिक मृत्यु हो गई) स्व. यूसुफ खाँ, बशीर अहमद, यूनस हुसैन खाँ (उनके इकलौते सुपुत्र जो उनकी परम्परा को आगे चलाते रहे), शराफ़त हुसैन खाँ, अकील अहमद, शफी अहमद, गजानन राव जोशी, डॉ. श्रीमती सुमति मुटाटकर, जगन्नाथ बुवा पुरोहित, श्रीमती मालती पाण्डे, बी. आर, अठावले, श्रीमती मीरा खिरवाडकर, डी. वी. काने, श्रीमती दुर्गा खोटे आदि।

वैयक्तिक स्तर पर विलायत हुसैन खाँ बहुत ही कोमल हृदय के इन्सान थे जो कभी भी किसी के खिलाफ बात नहीं करते थे। शायद ही कभी किसी को अवसर प्राप्त हुआ हो कि उनके मुख से कड़वे बोल सुनें। उन्हें केवल अपनी कला व कला-साधना पर विश्वास था और हर व्यक्ति जो इस कला का पुजारी था, उसकी वे इज्ज़त किया करते थे। सम्पूर्ण व्यक्तित्व के धनी विलायत हुसैन खाँ बड़े-बूढ़ों और बच्चों के साथ एक जैसे जोश व उत्साह से मिलते थे। एक महान् बहुभाषी पण्डितोचित गुणों से परिपूर्ण वे स्वयं को राजनीति के दाँव-पेंच से विमुख ही रखते थे। संगीत के खजाने को औरों पर लुटाने में वह जरा भी हिचकिचाते नहीं थे और न ही कभी अपने शिष्यों से कुछ छिपाने का ही प्रयत्न किया। उनके विस्तृत संगीत ज्ञान के कारण ही महाराष्ट्र की जनता उन्हें 'कोठीवाल' अर्थात् ज्ञान के भण्डार से सम्बोधित करती थी। सन् 1955 ई. में वे भारतीय कला केन्द्र से जुड़ने हेतु दिल्ली पधारे और एक वर्ष पश्चात् मुम्बई लौट गए व उसके बाद आकाशवाणी मुम्बई में सलाहकार के रूप में कार्यरत हुए। बाद में दिल्ली में बस जाने के बाद आकाशवाणी दिल्ली की सेवा में अपने जीवन के आखिरी समय तक जुटे रहे। जीवन के अन्त से पहले 'संगीतज्ञों के संस्मरण' नामक पुस्तक पूरी की, जिसे 'संगीत नाटक अकादमी' ने छापने का बीड़ा उठाया लेकिन इसका लाभ अधिक समय तक न उठा सके। अपने जीवनकाल में उन्हें उनका सही श्रेय कभी न मिल सका; यहाँ तक कि उनकी मृत्यु से पहले तक उनके नाम को 'अकादमी अवार्ड' (पुरस्कार) के लिए विचारा नहीं गया। जो उनके जीवन की अपरिपूर्ण अभिलाषा थी वह उनके साथ ही चली गई।

उनके आकर्षक व्यक्तित्व से विभिन्न श्रेणियों के लोग उनकी ओर आकर्षित व प्रभावित होते थे। 60 वर्ष की आयु में भी अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण वे औरों से भिन्न ही दिखाई देते थे। लेखकों में वे अपने समय के सर्वाधिक श्रेष्ठ लेखक माने जाते थे। उनकी कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं—राग 'रायसा-कान्हड़ा' में 'मन मोह लीनो श्याम सुन्दर ने', राग यमन—'मैं बारी-बारी जाऊँगी' राग धनाश्री—'तेरो ध्यान रहत दिन-रैन' आदि। आज भी उनकी रचनाओं को उनके शिष्य सम्पूर्ण भारत में गाते हैं। ऐसा लगता है मानो आज भी वे अपनी रचनाओं में जीवित हैं, हमारे बीच हैं, जब उनके शिष्य गाते हैं 'तेरो ध्यान रहत दिन-रैन' अर्थात् तेरी याद दिन-रात

हमारे साथ है। उर्दू व फारसी के ज्ञाता एवं एक कवि के रूप में उन्हें नज़दीक से जानने का अवसर बहुत कम लोगों को प्राप्त हुआ। उन्होंने 200 से ज्यादा रूबाइयाँ लिखीं लेकिन उन्हें प्रकाशित न करवा सके। संगीतज्ञों के बीच वे 'प्राणपिया' और उर्दू शायरों के बीच 'शफ़क' के नाम से याद किए जाते रहे हैं। स्वयं कृत रचनाएँ ही उनके नम्र, शीतल, स्वभाव को उजागर करती हैं कि वे किस प्रकृति के व्यक्तित्व के धनी थे। समय के साथ चलना उन्हें आता था और इसलिए किसी के लिए उनके मन में द्वेष न था। जीवन की निरन्तर गति के समान एक पल भी रुके बिना वे आखिरी साँस तक बस काम ही करते रहे। अपने जीवन की अन्तिम यात्रा, 18 मई सन् 1962 ई., के दिन भी वे कार्यरत रहे और अचानक बेहोश हो गए एवं इस सांसारिक जीवन की अन्तिम यात्रा पूरी कर उस अलौकिक यात्रा की शुरुआत कर हमारे बीच से चले गए। स्व. खाँ साहब ने उस समय हमारा साथ छोड़ दिया जब हम सबको उनकी अत्यावश्यकता थी।

वे एक महान् संगीतज्ञ, महान् आत्मा व शक्तिमान व्यक्तित्व से परिपूर्ण थे, जिनका जीवन 'कला' का जीता-जागता उदाहरण था। उनके जीवनकाल में उनकी महानता को नापना असम्भव था। उनकी मृत्यु से संगीत जगत् को जो क्षति पहुँची है उससे आज तक संगीत-प्रेमी स्वयं को अकेला महसूस करते हैं क्योंकि उनके जाने से उनका कभी न भर सकने वाला स्थान सदा खाली रहेगा।

'गुनिदास' जी की रचनायें

राग स्वानन्दी–धीमा त्रिताल

जियरा मानत नाहीं तुम बिन मोरे मन को भावना।
प्राण पिया 'दास गुनि' को बेग बुलाओ तुम अपने ढिंगरवा।।

स्थाई

सा प ग री ध़ सा री
प - मप ग री सा, रीसानि़ नि़,-ध़ सा - ,नि़ | सा नि़सा सा,
जि ऽ यऽ रा ऽ ऽ, माऽऽ ऽ,ऽऽ न ऽ, त | ना ऽ ऽ हिं,
×

ध़ नि़ म
नि. सा नि. सा -नि़ नि़ -ध़, ध़ नि़ सा ग - म - गम नि -ध
तु म बि न ऽऽ ऽ ऽऽ, मो रे म न ऽ ऽ ऽ कोऽ ऽ ऽऽ

नि रीं री सां ध
धनिसां -, सां नि ध प धनि धप म पग -प गरी सा -
ऽऽऽऽ ऽ, भा ऽ ऽ ऽ ऽऽ वऽ ऽ ऽऽ ऽऽ नाऽ ऽ ऽ

ध़ सा ग ध़ नि़
नि़नि़ -ध़; प - -म रीसा रीसानि़ नि़ -ध़ सा -नि़ |
ऽ ऽ ऽऽ; जि ऽ ऽय राऽ माऽऽऽ ऽ ऽऽ न ऽत |

अंतरा

ध नि नि
पमगम पनि ,नि | सां - नि नि -ध सां सां, ध नि सां गं -
प्राऽऽऽ णऽ ,पि | या ऽ ऽ ऽ ऽऽ तु म, दा ऽ स ऽ ऽ
×

गं रीं रीं नि ध प प ग म नि
-मं पंमं री सां नि ध प म ग -प री सा, गम धनि
ऽऽ गुऽ नी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽऽ को ऽ, बेऽ गबु

प
सां निसां सां, रींसां निध प - धनि ध प म ग -प गरी सा
ला ऽ ऽ बो, तुम अप ने ऽ ऽऽ ढिं ग र ऽ ऽऽ वाऽ ऽ

ध़ सा प ग री ध़ नि.
नि़नि़ -ध़, प मप ग री सा, रीसानि़, नि. -ध. सा -नि. |
ऽ ऽ ऽऽ, जि यऽ रा ऽ ऽ, माऽ ऽ, ऽ ऽऽ न ऽत |

राग कौंसीकान्हडा–त्रिताल (मध्यलय)

मान न करो री, वो तो करत बिनति
निसदिन बारबार आली री।
तेरो 'गुनिदास' ठाड़ो है द्वारे अब,
तोरे बोलन बिन व्याकुल भयो है अब।।

स्थाई

म
मा

										म					
-	म	-	म	ध॒	ग॒	म	-	ग॒	सा	ग॒	मग॒	री	सा	-,	नि॒सा
ऽ	न	ऽ	न	क	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	रो	ऽऽ	री	ऽ	ऽ,	वोऽ
3				×				2				0			

नि़						नि़								म	
रीसा	ध़	-	नि़	सा	-	सा	-	सा	नि़	रीसा	म	ग॒	सा	सा,	ग॒
ऽऽ	तो	ऽ	क	र	ऽ	त	ऽ	ए	ऽ	ऽऽ	ऽ	बि	न	ति,	नि
3				×				2				0			

नि॒							नि॒						म		
म	ध॒	-	नि॒	सां	-	सां	ध॒	नि॒	ध॒	म	म	म	ध॒	—	ध॒
स	दि	ऽ	न	बा	ऽ	रा	बा	ऽ	र	आ	ली	री	हो	ऽ;	मा
3				×				2				0			

म	म	-	म	
ऽ	न	ऽ	न	इत्यादि
3				